# शिक्षा के सामाजशास्त्रीय सिद्धांत-VI

## शिक्षा का वेबरवादी समाजशास्त्र

अमन मदान
अनुवाद : जनित जैन

ठीक इस वक्त जब मैं यह लिख रहा हूं, कॉलेज में दाखिलों का समय है और समाचार मीडिया में यह छाया हुआ है कि दिल्ली के कुछ कॉलेजों में दाखिले हेतु काफी ऊंचे अंकों की जरूरत है। बहुत कम ही ऐसी जगह हैं जहां समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, साहित्य के अच्छे शिक्षक मौजूद हैं और लगता है यदि आपके अंक 98 या 99 प्रतिशत नहीं हैं तो आप हमेशा के लिए उनकी कक्षाओं के बाहर ही इंतजार करते-करते क्षीण हो जाने के लिए अभिशप्त हैं। शिक्षा का वेबरवादी समाजशास्त्र इस अजीब स्थिति, जिसमें आज हम हैं, को समझने में हमारी मदद करता है। यह सुझाव देता है कि हैसियत और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष शिक्षा का एक मुख्य पहलू है। शिक्षा का वेबरवादी समाजशास्त्र यह सवाल पूछने में भी हमारी मदद करता है कि क्या शिक्षा सही मायने में यही है?

शिक्षा के समाजशास्त्र का वेबरवादी दृष्टिकोण मार्क्सवाद से थोड़ा भिन्न है। शास्त्रीय मार्क्सवाद समाज में होने वाले सभी तरह के संघर्ष को आर्थिक वर्गों के बीच होने वाले संघर्ष के तौर पर देखता था। उनका मानना था कि जिनके पास संसाधन अधिक हैं व जिनके पास कम हैं, उनके द्वारा शिक्षा को क्रमशः अलग-अलग दिशाओं में खींचा जाता है। जिनका उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण होता है, वे चाहते हैं कि शिक्षा वही करे जो केवल उनके लिए उपयुक्त हो, जो उनकी रुचियों और जरूरतों के अनुरूप हो। समाज और शिक्षा के संघर्ष वास्तव में समाज की भौतिक स्थितियों के लिए होने वाले संघर्षों का ही परिणाम हैं। वेबरवादी दृष्टिकोण मानता है कि लोग सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं के लिए भी संघर्ष करते हैं, खासतौर पर हैसियत और सत्ता के लिए, और ये जरूरी नहीं कि ये संघर्ष मूलतः भौतिक स्थितियों से ही उपजे हों। हो सकता है कि कवियों के एक समूह के लिए एक उम्दा 'शेर' लिखा जाना उन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा देता हो। पैसा कमाने से ज्यादा उनके लिए कविता लिखना अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे एक नई गजल लिखने के लिए काफी समय और ऊर्जा झोंक देंगे, और साथियों से प्रशंसा हासिल करेंगे लेकिन अपनी नौकरियों पर मुश्किल से ही कोई ध्यान देंगे। कविता की अलग-अलग शैलियों के हिमायती आपस में लड़ते-झगड़ते हुए दिख जाएंगे और अपने विरोधियों पर कीचड़ उछालते हुए भी। वे पाठ्यपुस्तकों के संपादक मंडलों में से एक-दूसरे को बाहर धकेलते हुए दिखेंगे और उनकी कविताओं को स्कूल के पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं बनने देंगे जो कला के किसी अन्य स्वरूप पर काम करते हों। यह सब वास्तव में क्या है? यह भौतिक संसाधनों पर नियंत्रण हासिल करने का मामला नहीं है क्योंकि इस सब में मुश्किल से ही कहीं कोई पैसा शामिल है। और तो और कविता के ये दोनों विरोधी समूह हो सकता है एक ही वर्ग से आते हों।

## शिक्षा व प्रस्थिति या हैसियत समूह

मैक्स वेबर (1864-1920) ने तर्क दिया कि हम अपने जीवन में प्रतिष्ठा और ताकत के लिए भी कार्य कर रहे होते हैं, ना कि सिर्फ जीवन के भौतिक पहलुओं के लिए। हम जो कुछ करते हैं वह क्यों करते हैं और हमारे तमाम संघर्ष किसलिए हैं, इसे समझने हेतु नव-मार्क्सवादी, अब भौतिक स्थितियों के अपने पुराने आग्रह से आगे बढ़ते हुए इस अधिक जटिल तरीके को स्वीकारने लगे हैं। वेबर ने हमारी दुनिया में घटने वाली कई चीजों को समझने हेतु एक अवधारणा का इस्तेमाल किया जिसे 'प्रस्थिति या हैसियत समूह (स्टैटस ग्रुप)' कहा जाता है। वे कहते थे कि एक जैसी सांस्कृतिक पहचान वाले लोग एक साथ आ जाते हैं, एक अलग समूह बनाते हैं और अन्य प्रतियोगी समूहों के साथ सम्मान व प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते हैं। इसे बहुत ही सरल तौर पर ऐसे भी देखा जा सकता है जैसे किसी विश्वविद्यालय में मेरी मातृभाषा पंजाबी बोलने वाले लोग इसलिए साथ आ जाएं कि वे आपस में एक प्रकार की एकजुटता महसूस करते हैं। और इस तरह से संभव है कि वे अन्य लोगों से एक दूरी बना लें और इस बात पर जोर देने लगें कि वे बिहारी और बंगालियों से कम नहीं हैं। या फिर ये हैसियत समूह उन लोगों के भी हो सकते हैं जिनके पास आईआईटी से डिग्रियां हैं और वे एक ही कंपनी में काम करते हैं इसलिए एक अलग समूह बनाना शुरू कर दें और ये सोचना कि वे दूसरों से अलग व बेहतर हैं। अलग-अलग तरह के अनुभव और सांस्कृतिक समझ भी हैसियत समूह के बनने को बढ़ावा दे सकते हैं।

स्कूल व कॉलेज सिर्फ बेहतर नौकरियों में जाने के लिए नहीं हैं बल्कि ये हैसियत समूहों में बंटने के भी रास्ते खोलते हैं। जब माता-पिता बच्चों के अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में दाखिले के लिए संघर्ष करते हैं तब वे केवल नौकरियों के बेहतर अवसर निर्मित करने की ही कोशिश नहीं कर रहे होते बल्कि अंग्रेजी बोलने वाले सर्कल में शामिल होकर वे अपनी और अपने बच्चों की हैसियत या प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश भी कर रहे होते हैं। वेबर ध्यान दिलाते हैं कि हैसियत समूहों की सदस्यता ऊंची प्रतिष्ठा और ताकत की भी निशानी हो सकती हैं। वेबरवादी समाजशास्त्रियों का कहना है कि बहुत कुछ जो शिक्षा के नाम पर हो रहा है वह इसलिए नहीं हो रहा कि यह बच्चों के लिए आवश्यक तौर पर 'अच्छा' ही है बल्कि यह एक तरीका है जिसके माध्यम से वे उच्च-प्रतिष्ठा या हैसियत समूहों में प्रवेश पा सकते हैं या कम से कम उसका दिखावा तो कर ही सकते हैं। यह भी एक कारण है जिसकी वजह से मिशनरी विद्यालय के प्रति एक आकर्षण पैदा हुआ था, उन्होंने यह सिखाया कि ऊंचे सामाजिक औहदे वाले लोगों की तरह कैसे बोलना है, कैसे खड़े होना है, कैसे कपड़े पहनना है और किस तरह की रुचियां रखनी हैं। और यह भी एक वजह हो सकती है कि क्यों शिक्षा को लेकर होने वाले झगड़े प्रान्तीय बोर्ड के स्कूलों में प्रवेश लेने के लिए थे जहां हर कोई जाता है या फिर सीबीएसई से जुड़े हुए स्कूलों में प्रवेश पाने के लिए होते थे जहां उन लोगों के बच्चे जाते थे जो ऊंचे औहदों पर हैं। बड़े शहरों में आजकल कुछ अभिभावक अपने आप को श्रेष्ठ महसूस करते हैं यदि वे यह कह सकते हैं कि उनके बच्चे अन्तर्राष्ट्रीय बोर्ड में पढ़ते हैं जहां आईबी और ए लेवल जैसी डिग्रियां प्रदान की जाती हैं। हालांकि, किसी खास स्कूल में पढ़ने के जाहिर है कि कुछ आर्थिक एवं शुद्ध शैक्षिक कारण भी हो सकते हैं लेकिन वेबरवादी हमें यह समझने में मदद करते हैं कि हैसियत समूहों की सदस्यता भी एक घटक है जिसकी भूमिका देखी जा सकती है।

निचले औहदे के हैसियत समूह ऊंचे औहदे के हैसियत समूहों की नकल करने की कोशिश करते हैं या कोई सदस्य व्यक्तिगत तौर पर उच्च समूह में शामिल होने की कोशिश कर सकता है। शिक्षा आज के दौर में ऐसा करने हेतु सबसे ताकतवर तरीकों में से एक है। इसी बीच ऊंचे औहदे वाले समूह ऊपर चढ़ने वालों को वापस धकेलने की भी कोशिश करते हैं। दरअसल वे ऊंचे औहदे पर इसलिए ही विराजमान हैं क्योंकि वे यह कह सकते हैं कि वे दूसरों से 'अलग' हैं। यदि निचले समूह आपके पड़ौस में जमा हो गए हैं तो जवाब यही होगा कि आप उन्हें बाहर रखने की कोशिश करें या फिर और भी अधिक अनन्य या एकांत इलाके में चले जाएं। यदि किसी की हैसियत स्कूल में संस्कृत सीखने से बनी है और यदि फिर सभी संस्कृत सीखने लगें तो जो ऊंची हैसियत हासिल करना चाहते हैं वे चाहेंगे कि उनके बच्चे इसकी बजाय जर्मन या फ्रेंच सीखें।

## शिक्षा का तार्किकरण

हैसियत समूहों के बीच होने वाले इसी तरह के संघर्षों से शिक्षा व्यवस्था आकार लेती है। लेकिन इसी के साथ वेबर ये भी कहते थे कि हैसियत समूहों की सदस्यता और जिस तरह की शिक्षा हम चाहते हैं, वह चारित्रिक तौर पर भी एक मौलिक बदलाव के दौर से गुजर रही है। 18वीं सदी के यूरोप में एक शिक्षित व्यक्ति वह था जो संगीत जानता था, ग्रीक दर्शन पढ़ता था और जिसकी एक खास किस्म की 'परिष्कृत' जीवन शैली थी। एक भद्र पुरुष होने का मतलब था कुछ खास व्यक्तिगत गुणों का मौजूद होना। जैसा कि वेबर कहते थे, शिक्षा के मायने हैं एक खास करिश्माई व्यक्तित्व और शैली से युक्त होना। लेकिन, शिक्षा के साथ अन्य सभी चीजें भी नौकरशाही व तार्किकरण की दिशा में बढ़ रही हैं। हम अपना काम किस तरह से करते हैं यह व्यक्तिगत रवैए और रुझानों से तय नहीं होता है। बल्कि यह कुछ नियमों और व्यवस्था द्वारा निर्देशित है। अब लगभग हर चीज एक तार्किक और नौकरशाही तरीके से चलती है। जहां पहले शिक्षित होने का मतलब काफी व्यक्तिगत किस्म की कुछ विशेषताओं का पाया जाना था वहीं अब इसके मायने नौकरशाही से प्राप्त प्रमाण-पत्रों का होना है। एक व्यक्ति करिश्माई वक्ता हो सकता है जो कि काफी विद्वान और समझदार हो, लेकिन यदि उसके पास ग्रेड 12 या किसी कॉलेज की डिग्री ना हो तो उसे अशिक्षित घोषित कर दिया जाता है।

मेरी मां की दादी ने यह बदलाव अपनी आंखों से देखा था और वह अपनी तरह से इसके खिलाफ लड़ती रहीं। मैंने बहुत सी कहानियां सुनी हैं कि कैसे ये युवा अपनी पांचवी और आठवीं पास होने की पहचान के साथ गर्व के साथ आते थे और वह उनसे पूछती थी कि क्या वे यूसुफ जुलेखां को गा सकते हैं जो कि एक लोकप्रिय पंजाबी सूफी रचना थी। वह मूंह बनाते हुए कहती थी कि ये लोग सूफी कविता को महसूस नहीं कर सकते और खुद को 'शिक्षित' कह रहे हैं। शिक्षित होने के मायने थे, व्यक्तिगत रूपांतरण, जो आपके शरीर के अंतर में घटित हो। शिक्षा के सर्वोच्च शिक्षाक्रम को कभी-कभी 'दर्शन' भी कहा जाता था जहां जानने के मायने थे एक ऐसा अनुभव जो आपको ऊंचा उठा दे, आपको जागृत कर दे, ज्ञान की रोशनी से भर दे। जबकि शिक्षा के तार्कीकृत विवेचन में जो महत्त्वपूर्ण बन गया वह है, ऐसे कौशलों और ज्ञान का होना जिनका परीक्षा में प्रदर्शन किया जा सके।

सामाजिक जीवन के तार्कीकरण और नौकरशाहीकरण के कई परिणाम सामने आए। वेबर कहते थे कि इनमें से एक था हमारे शिक्षित व्यक्ति के आदर्श का परिवर्तित हो जाना। एक सुसंस्कृत व्यक्ति जिसकी अपनी अनूठी संवेदनाएं हों, जिसे सही और गलत का बोध हो, जो सुंदर और कुरूप में भेद कर सके, से एक तकनीकी व्यक्ति में तब्दील हो जाना जो दक्ष हो, नियमों को जानता हो, और संगठन के ढांचे में ठीक से काम करने के लिए प्रतिबद्ध हो। जाहिर है कि शिक्षा की पुरानी वैयक्तिक किस्म की समझ काफी गैर-समावेशी थी यानि कुछ खास छोटे समूह ही सुसंस्कृत माने जा सकते थे। जबकि शिक्षा का नया स्वरूप, अपने नौकरशाही चरित्र की वजह से, कहीं अधिक लोगों तक अपनी पहुंच बना सकता है और यह अधिक लोकतांत्रिक है। लेकिन इसके लिए जो मूल्य चुकाना होगा, वह है उस सौंदर्य और व्यक्तिगत महानता को खो देना।

## क्रीडेंशलिज्म और सामाजिक असमानता

शिक्षा की विषयवस्तु जो भी हो-गहरा भावनात्मक रूपांतरण या फिर पहाड़ों को रटना - वेबरवादियों का विश्वास है कि यह हैसियत समूहों के बीच राजनीति व ऊंचे औहदों के लिए प्रतियोगिता की ओर ले जा सकता है। हैसियत समूह आगे रहने के लिए एक-दूसरे के साथ संघर्ष करते हैं। शिक्षा की गुणवत्ता में भले ही फर्क आ गया हो लेकिन हैसियत समूहों की राजनीति समकालीन दौर में भी उसी तरह से जारी है।

अमेरिकन समाजशास्त्री रैंडल कालिंज को शिक्षा के वेबरवादी विश्लेषण के लिए जाना जाता है। वे यह मानते हैं आजकल स्कूल व कॉलेज शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण दिखाई देती है और ज्यादातर लोग इसे प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन एक वेबरवादी होने के नाते वे इसकी सामान्य प्रकार्यवादी व्याख्या को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। प्रकार्यवादी कहेंगे कि नौकरशाही से ग्रस्त शिक्षा इसलिए लोकप्रिय हो गयी है क्योंकि यह कुछ खास किस्म के ज्ञान को सिखाती है जो आर्थिक विकास के लिए फायदेमंद है। नई नौकरियां पैदा हो रही हैं जिनके लिए नए तरह के ज्ञान की जरूरत है।

शिक्षा ने इस ज्ञान को उपलब्ध कराया है और इससे अपेक्षा है कि यह आपको अपनी नौकरियों में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए तैयार करे। कॉलिंज ने यूएसए के एक हिस्से में पिछले समय में विभिन्न किस्म की नौकरियों के लिए डिग्री की बढ़ती हुई आवश्यकता के संदर्भ में ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। उन्होंने यह दिखाया कि कई नौकरियां दशकों से एक जैसी बनी हुई हैं लेकिन उन्हें हासिल करने हेतु शैक्षिक अर्हता या पात्रता काफी बढ़ चुकी थी। सामान्यीकृत तरीके से यह नहीं कहा जा सकता कि, क्योंकि शिक्षा नए कौशलों को उपलब्ध करा रही थी और इसलिए शैक्षिक पात्रता बढ़ गई थी। अकुशल व अर्धकुशल नौकरियां जो काफी कुछ वैसी ही बनी हुईं थीं और तब भी उनके लिए अब कम से कम स्कूली शिक्षा होने की आवश्यकता थी।

ना ही ऐसा था कि नई नौकरियों में ऐसे किसी खास ज्ञान की आवश्यकता थी जिसे केवल शिक्षा ही उपलब्ध करा सकती थी। मैंने कई बार इंजीनियरों को यह कहते सुना है कि उनके अधिकतर कामों के लिए जो जरूरी है वह है बस कक्षा 12 तक की विज्ञान और शायद एक साल का अतिरिक्त प्रशिक्षण। वे सोचते हैं कि उन्हें बी टेक में पूरे चार साल क्यों गंवाने पड़े। कई तरह के कैरीअर में सेवाकालीन प्रशिक्षण ही उनमें अच्छा प्रदर्शन करने हेतु काफी होता है। तो फिर लोग उनके लिए डिग्रियां क्यों चाहते हैं? रैंडल कॉलिंज इसके लिए एक संभावित व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, एक ऐसे समय की कल्पना कीजिए जब बस कंडक्टर की नौकरी के आवेदन करने वाले कुछ ही लोग हों। इस काम के लिए जो चाहिए वह है बस कक्षा 5 तक का अंकगणित ज्ञान। आपको सिर्फ इतना आना चाहिए कि कैसे जोड़ते हैं, कैसे घटाते हैं और किस तरह पैसे और टिकिटों को गिनना है। जब बहुत ही कम आवेदन प्राप्त हुए हों तो बस कम्पनी कक्षा 5 पास अभ्यर्थियों को ले लेगी और उसकी भर्ती पूरी। लेकिन जब अन्य लोगों को यह जानकारी मिलेगी और वे भी कक्षा 5 के प्रमाणपत्र प्राप्त करना शुरू कर देते हैं और जब हजारों आवेदन कुछ दर्जन भर पदों के लिए होने लगते हैं तो चीजें मुश्किल होना शुरू हो जाती हैं। हजारों आवेदनों में से आप कैसे चुनाव करें? तब बस कम्पनी यह कहना शुरू करती है कि वे केवल 12वीं पास वालों को ही लेंगे ना कि 5वीं पास वालों को। इससे आवेदनकर्ताओं की संख्या बहुत कम रह जाती है और ऐसा भी प्रतीत होता है कि चुनावी प्रक्रिया तटस्थ और पक्षपातहीन रही है। कॉलिंज कहते हैं कि इस तरह से बढ़ाई गई आवश्यक पात्रता ही शिक्षा के लिए इतनी अधिक मांग के लिए जिम्मेदार थी। यह केवल बेहतर ज्ञान के लिए मांग नहीं थी। यह कुछ खास हैसियत समूहों (उस तरह के लोग जो कि 12वीं की डिग्री प्राप्त कर सकते थे) को अंदर रखने और कुछ हैसियत समूहों (उस तरह के लोग जो कि सिर्फ 5वीं तक ही पढ़ सकते थे) को बाहर रखने का एक तरीका भी था।

रैंडल कॉलिंज कहते थे कि हमने आज एक ऐसा समाज बना लिया है जिसे वे 'अर्हता (क्रीडेंशल) समाज' कहते थे। अर्हता और डिग्रियों के मुखौटे के पीछे जो यह असमानता काम कर रही थी वहां लोगों को शिक्षा नहीं बल्कि डिग्रियां और प्रमाणपत्र चाहिए थे। यही वे साधन थे जिनकी मदद से कुछ खास हैसियत समूहों की ताकत को बनाए रखा जा सकता था और अन्य हैसियत समूहों को ताकतवर बनने से रोका जा सकता था। यह सबसे विकसित पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ-साथ उन देशों में भी सामान्य था जहां अब भी सामुदायिक पहचानों को खुले तौर पर तवज्जो मिलती थी। कॉलिंज के अनुसार, इसका कारण यह था कि हालांकि हमने संगठनों का 'तार्कीकरण व नौकरशाहीकरण कर दिया था फिर भी वहां रहने वाले लोग अपने जैसे लोगों को ही आस-पास देखना चाहते थे।

वेबर को ही प्रतिध्वनित करते हुए कॉलिंज कहते थे कि किसी भी संगठन में जो घट रहा है उसे नियंत्रित करने के लिए हमेशा एक संघर्ष पाया जाता है। यह हमारे मनुष्य होने का एक हिस्सा है, हम हमेशा से ही चीजों को नियंत्रित करना चाहते हैं और उन्हें अपने अनुसार मोड़ना चाहते हैं। आरम्भिक मार्क्सवादियों को लगता था कि संसाधनों पर यदि सभी का समान नियंत्रण हो तो यह समाज में होने वाले झगड़ों को निबटाने के लिए काफी है। वेबरवादी दृष्टिकोण हमारे इन दुखों के इतने सरल और संतोषजनक हल की उम्मीद को अस्वीकार करता है। कई सारे बुद्धिजीवी मानते हैं कि खुद मार्क्स भी इसमें भरोसा नहीं करते थे कि संपत्ति के पुनर्वितरण पर आधारित क्रांति सभी तरह के संघर्षों को अंत की ओर ले जाएगी। वेबरवादी स्पष्ट हैं कि संघर्ष जारी रहेंगे और इसका कारण यह है कि हम हमेशा चीजों को अपनी तरह से चलाना चाहते हैं और दूसरे अपनी तरह से। हां, हम झगड़ों को कम कर सकते हैं और उन्हें रचनात्मक दिशा में मोड़ सकते हैं। इनका ऐतिहासिक चरित्र बदल सकता है लेकिन संघर्ष मौजूद रहेंगे।

संगठनों के भीतर लोग उन लोगों को भर्ती करना ज्यादा सुविधाजनक महसूस करते थे जो उन्हीं की तरह महसूस करते व सोचते थे। इससे जो लोग जिम्मेदार हैं उनके अजेंडे को आगे बढ़ाने में मदद मिलती थी। लोग जो अलग तरह से सोचते, वे तर्क-वितर्क करते, असंतुष्ट रहते और सामान्यतया ऐसे लोगों को अपेक्षित दिशा में जाने के लिए मनाने हेतु काफी कोशिशें करनी पड़तीं। इसका जवाब यही था कि ऐसे लोगों को लें जिनका हैसियत समूह तो कम से कम वही हो जो कि संस्था में मौजूद लोगों का है। यह और भी ज्यादा तब अपेक्षित था जबकि दो या अधिक हैसियत समूह संस्था को नियंत्रित करने के लिए संघर्ष कर रहे हों। उदाहरण के लिए, यदि टैगोर की विचारधारा को मानने वाले लोग किसी स्कूल में बीएड स्नातकधारियों से इस बात पर संघर्ष कर रहे हों कि स्कूल को कैसे चलाना है तो जाहिर है वे सामान्य बीएड स्नातकों की बजाय शांति निकेतन के स्नातकों को प्राथमिकता देंगे। संस्था के भीतर होने वाले संघर्षों में किसी हैसियत समूह की साझा सदस्यता एक मुख्य संसाधन थी।

अधिक अंक प्राप्त करने की कोशिश और खास किस्म की डिग्रियां आंशिक तौर पर ही सही पर किसी ताकतवर हैसियत समूह में शामिल होने के लिए भी एक संघर्ष था। यह एक किस्म की रस्साकशी की प्रक्रिया थी। उच्च हैसियत समूह अपने आप को खास और दूसरों से अलग दिखा कर अपने औहदे को बरकरार रखते थे। अगर उन्हें और सभी की तरह ही बनना होता तो वे बिलकुल साधारण दिखाई देते और अपने ऊंचे औहदे को खो देते। उदाहरण के लिए एलएलबी की डिग्री का उदाहरण लेते हैं। कोई सौ साल पहले यह सबसे ज्यादा इच्छित डिग्री हुआ करती थी और एक तरह से समृद्ध जीवन का पासपोर्ट थी। आप एक पश्चिमी जीवनशैली वाले व्यक्ति बन जाते थे ताकतवर लोगों के साथ कंधे मिलाते थे और सम्मान व ताकत हासिल करते थे। बहुत सारे लोग वकील बनने का सपना देखते थे लेकिन बहुत कम बन पाते थे। तब विश्वविद्यालयों ने कानून विभागों की संख्या बढ़ानी शुरू कर दी और उनके नामांकन की भी। लगभग तीस साल पहले तक एक ऐसी स्थिति आ गई जहां, उदाहरण के लिए पंजाब विश्वविद्यालय में ये हाल था कि यदि आपको कहीं और दाखिला नहीं मिला है तो आपको कानून विभाग में तो प्रवेश मिल ही जाता

हाल यह था कि कोई एक पत्थर फैंके तो यह वकालत का चोगा पहने तीन कंगाल वकीलों को लगता। हैसियत समूह के तौर पर वकीलों का सम्मान तेजी से गिर चुका था। उसके बाद राष्ट्रीय लॉ स्कूल आए और कंपनियों ने उनसे अपने आंतरिक, घरेलू वकीलों को भर्ती करना शुरू कर दिया। पदों की संख्या बहुत कम होती थी इसलिए भारी प्रतियोगिता पैदा हो गई। अब वकीलों के कई स्तर हो गए कुछ को भारी तनख्वाह मिलती थी, कुछ को बहुत कम।

वेबरवादी कहेंगे कि आजकल ऐसी संस्थाओं के लिए प्रतियोगिता इसलिए है क्योंकि एक छोटा-सा हैसियत समूह है जिसकी तनख्वाह और हैसियत में बाकी सभी से काफी बड़ा फर्क है। एक बड़ी संख्या है जो इसमें प्रवेश पाना चाहती है और इस हैसियत समूह में प्रवेश पाना मुश्किल है, इसका कारण यह नहीं है कि लोग इसमें अपनी जगह बनाने के लिए पर्याप्त काबिल नहीं हैं बल्कि कारण यह है कि सबसे ऊपरी पायदान पर मौजूद हैसियत समूह की हैसियत इसलिए बरकरार है क्योंकि वे संख्या में कम हैं और अपनी विशिष्टता बनाए हुए हैं। अगर ऊपरी पायदान पर मौजूद हैसियत समूह अन्य लोगों को शामिल करने लगे तो वह अपने विशेष और अनूठे होने की प्रतिकात्मकता से जो प्रभाव रचते हैं उसे खो देंगे। फिर ये कैसे संभव होगा कि वह व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए जरूरी सम्मान और ताकत हासिल कर सकें।

शिक्षा व्यवस्था में बड़े-बड़े बदलाव हैसियत समूहों के बीच होने वाले संघर्षों से उपजते हैं। भारत में कुछ समुदाय हैं जो अधिक सम्मान और हैसियत हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं, हो सकता है वे इसके लिए स्कूल खोलने का रास्ता चुनें। इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण दक्षिण भारत के 'इरवा' और 'नादरों' का है। जब उन्होंने जातिगत मूल्यों से नियंत्रित समाज में ऊंचा ओहदा और ज्यादा सम्मान प्राप्त करने हेतु संघर्ष किए तो बीसवीं सदी के मोड़ पर उन्होंने शिक्षा को इसका एक अच्छा जरिया पाया। पूरे भारत में हमें ऐसे कई अन्य समुदाय मिल जाएंगे जो स्कूल खोलकर या अपने बच्चों की शिक्षा को बढ़ावा देकर अपनी हैसियत को बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। मार्ग्रेट एस. आर्चर (1982) कहती हैं कि उन्नीसवीं सदी में पश्चिमी यूरोप में स्कूलों का विकास और विस्तार मुख्य तौर पर इसी तरह के उद्देश्यों से संचालित रहा। यदि एक हैसियत समूह ने दूसरों की तुलना में अधिक सम्मान हासिल करने के लिए संघर्ष किया, तो स्कूलों की संख्या और पहुंच में वृद्धि हुई।

वेबरवादी समाजशास्त्र हमें पुनः इस पर विचार करने के लिए कहता है कि शिक्षा की दुनिया में क्या हो रहा है और क्या यह हैसियत समूहों के बीच होने वाली राजनीति की वजह से है या कुछ ऐसी वजहों से जो कि अपने आप में कुछ ज्यादा उचित हैं। कुछ कोर्सों में दाखिले के लिए जो अत्यधिक ऊंचे अंकों की जरूरत है, यह इस बात का प्रतीक हो सकती है कि कुछ खास संस्थानों व अन्य के बीच हैसियत और शक्ति में एक बहुत बड़ा अंतर है। यह अंतर कई वजहों से हो सकता है, जिसमें यह भी शामिल है कि उच्च हैसियत समूह दूसरों को अपने सर्कल में शामिल करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। प्रतिष्ठा केवल आंतरिक अच्छाई के अतिरिक्त अन्य कई कारणों से भी हो सकती है। प्रायः यह इसलिए होती है क्योंकि यह ताकत और प्रभुत्व बनाए रखने की काबिलियत से जुड़ी होती है।

इसे देखने का एक दूसरा तरीका 1920 के दशक में गांधी द्वारा छात्रों से की गई उस अपील में दिखाई दिया जब उन्होंने ब्रिटिश राज द्वारा स्थापित स्कूलों और कॉलेजों को छोड़कर आने के लिए कहा। वे एक वैकल्पिक किस्म के हैसियत समूहों का निर्माण करना चाहते थे जो ब्रिटिश राज द्वारा स्थापित सामाजिक ताने-बाने और संस्कृति को चुनौती दे सकें। उनकी एक छोटी-सी पुस्तिका ''रचनात्मक कार्यक्रम'' (गांधी, 1945) में एक टिप्पणी में वेबरवादी समाजशास्त्र की प्रतिध्वनि देखकर मैं अवाक रह गया। उन्होंने कहा कि वे जानते थे कि भारतीय ब्रिटिश स्कूल और कॉलेजों में क्यों जमा होना चाहते थे। ''यह एक बेहद आकर्षक सर्कल में प्रवेश पाने का पासपोर्ट है'' (पृ. 27)। लेकिन उन्होंने विद्यार्थियों को निकलकर कांग्रेस पार्टी के कार्य में उनके साथ शामिल होने का न्यौता दिया। आखिर वे खुद भी एक अलग किस्म के विश्विद्यालय के विद्यार्थी थे।

वेबरवादी हमें यह समझने में मदद करते हैं कि शिक्षा ऐसे हैसियत समूहों को शक्ति प्रदान करने का एक तरीका हो सकता है जिनका ज्ञान और संस्कृति शायद वास्तव में उस सम्मान के योग्य नहीं है जो कि उसे मिला हुआ है। अगले लेख में हम पियरे बोर्दियो के काम को समझेंगे जो शिक्षा के माध्यम से शक्ति और नियंत्रण हासिल करने के हैसियत समूहों के मन-गढ़न्त तौर-तरीकों और उनकी संस्कृति की छानबीन करने वाले महान विद्वानों में से एक रहे हैं। जब हम एक सार्थक, न्यायपूर्ण और वैध किस्म की शिक्षा का निर्माण करना चाहते हैं तो इस तरह के खतरों से सावधान रहना मददगार होता है। ◆

**लेखक परिचय :** जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्रा का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्रा के प्रोफेसर हैं।

**संपर्कः** amman.madan@apu.edu.in

**संदर्भ :**

Archer, Margaret S. 1982. The Sociology of Educational Expansion: Take-off, Growth and Inflation in Educational Systems. Beverly Hills; London: Sage Publications Inc.

Gandhi, M.K. (1945) 1991. Constructive Programme: Its Meaning and Place. Ahmedabad: Navjivan Trust.

**अतिरिक्त पठन सामग्री :**

Collins, Randall. 1971. 'Functional and Conflict Theories of Educational Stratification'. American Sociological Review 36 (6): 1002-19.

(1971) 2010. 'शैक्षिक स्तरण के प्रकार्यवादी और द्वंद्वात्मक सिद्धांत'. Shiksha Vimarsh 12 (2): 105-20.

Madan, Amman. 2014. 'Max Weber's Critique of the Bureaucratisation of Education'. Contemporary Education Dialogue 11 (1): 95-113.

Rao, Srinivasa S., and Smriti Singh. 2018. 'Max Weber's Contribution to the Sociology of Education: A Critical Appreciation'. Contemporaray Education Daologue 15 (1): 73-92.